

भारत में सांप्रदायिकता का उदय: एक अध्ययन

डॉ. लक्ष्मी देवी सैनी

प्रवक्ता - इतिहास

पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय मॉडल इंटर कॉलेज सेमरा
आगरा (उत्तर प्रदेश)

संक्षेप

भारत में सांप्रदायिकता का उदय एक जटिल और गहन प्रक्रिया है, जो विशेष रूप से उपनिवेशी शासन और विभाजन के बाद बढ़ी। ब्रिटिश शासन के दौरान "डिवाइड एंड रूल" नीति ने धार्मिक पहचान को और मजबूत किया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में विभाजन और असहमति बढ़ी। विभाजन (1947) के समय और उसके बाद, सांप्रदायिक दंगे और संघर्षों ने सामाजिक ताने-बाने को प्रभावित किया। भारतीय समाज में सांप्रदायिकता का प्रभाव केवल धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राजनीति, अर्थव्यवस्था और मीडिया के माध्यम से भी फैलता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि सांप्रदायिकता कैसे भारतीय समाज में उभरी और इसके परिणामस्वरूप किस प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने जन्म लिया। इसके साथ ही, सांप्रदायिकता से निपटने के उपायों और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने के प्रयासों पर भी विचार किये जाने की आवश्यकता है।

सूचक शब्द: सांप्रदायिकता, उपनिवेशी शासन, विभाजन (1947), सामाजिक ताने-बाने, राजनीतिक परिवर्तन

प्रस्तावना

भारत, जो अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता के लिए जाना जाता है, में सांप्रदायिकता का उदय एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है। सांप्रदायिकता का यह रूप भारतीय समाज में धार्मिक समूहों के बीच असहमति, संघर्ष और पहचान की राजनीति को जन्म देता है। ब्रिटिश उपनिवेश के दौरान 'डिवाइड एंड रूल' नीति ने भारतीय समाज में धार्मिक और जातीय पहचान को मजबूत किया, जिससे सांप्रदायिक तनाव की नींव पड़ी। विभाजन के समय (1947) के बाद, जब भारत और पाकिस्तान के बीच सीमाएँ खींची गईं, तब सांप्रदायिक संघर्षों ने और अधिक तीव्र रूप लिया। भारतीय समाज में सांप्रदायिकता के उदय की प्रक्रिया में कई कारक शामिल हैं, जैसे धार्मिक पहचान, राजनीतिक उद्देश्य

और समाज में व्याप्त असमानताएँ। भारतीय राजनीति में सांप्रदायिक तत्वों का प्रवेश, खासकर धार्मिक पार्टियों और संगठनों के रूप में, समाज के विभिन्न हिस्सों को एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करता है। इसके परिणामस्वरूप, सांप्रदायिक दंगे, जैसे कि गुजरात 2002 और मुज़फ्फरनगर 2013, भारतीय समाज को गहरे संकट में डालते हैं। हालांकि, भारत का संविधान धर्मनिरपेक्षता को अपनी मूल धारा मानता है, लेकिन सांप्रदायिकता राजनीति और मीडिया के माध्यम से भी फैलती है, जिससे समाज में धर्म और राजनीति के मिश्रण के कारण एक नए प्रकार का संकट उत्पन्न होता है। इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय समाज में सांप्रदायिकता के उदय के कारणों, इसके राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों को समझना है, साथ ही यह भी देखना है कि कैसे यह भारतीय समाज के सामूहिक और राष्ट्रीय धारा को प्रभावित करता है।[1]

अध्ययन का महत्व

भारत में सांप्रदायिकता का उदय एक महत्वपूर्ण अध्ययन है, क्योंकि यह देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को समझने में मदद करता है। सांप्रदायिकता ने भारतीय समाज में गहरे दवाब, संघर्ष और विभाजन को जन्म दिया है, जिससे समाज में असहमति और हिंसा का वातावरण बना है। इस अध्ययन के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि सांप्रदायिक विचारधाराएं समाज के विभिन्न हिस्सों को कैसे प्रभावित करती हैं और इसके राजनीतिक प्रभाव क्या हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में सांप्रदायिकता की समझ हमें धर्मनिरपेक्षता की महत्वता को उजागर करने, विभिन्न समुदायों के बीच सद्भाव बनाए रखने और भविष्य में सांप्रदायिक तनावों को कम करने के उपायों को पहचानने में मदद करती है। इस अध्ययन से हम भारतीय समाज की सांप्रदायिक धारा को समझकर उसे मजबूत और सहिष्णु बना सकते हैं।[2]

सांप्रदायिकता का उद्भव और विकास

सांप्रदायिकता का उद्भव भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान हुआ, जब अंग्रेजों ने "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाकर हिंदू-मुस्लिम एकता को कमजोर करने का प्रयास किया। सामाजिक और आर्थिक रूप से मुसलमानों की स्थिति में गिरावट आई, जिससे उनके भीतर असुरक्षा और अलगाव की भावना पैदा हुई। दूसरी ओर, हिंदू समाज ने पश्चिमी शिक्षा और नई व्यवस्थाओं को तेजी से अपनाया, जिससे उन्हें सरकारी नौकरियों और व्यापार में सफलता मिली। यह अंतर दोनों समुदायों के बीच सामाजिक और आर्थिक असंतुलन का कारण बना, जिसने सांप्रदायिकता को जन्म दिया।

ब्रिटिश सरकार ने इसे और बढ़ावा देने के लिए राजनीतिक स्तर पर भी सांप्रदायिक विभाजन को प्रोत्साहित किया। 1905 में बंगाल का विभाजन, 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना और 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम में मुसलमानों को पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार देना इसके उदाहरण हैं। इन निर्णयों से न केवल हिंदू और मुसलमानों के बीच अविश्वास बढ़ा, बल्कि यह स्पष्ट रूप से राजनीतिक हितों के लिए सांप्रदायिकता को संस्थागत रूप देने की योजना थी। स्वदेशी आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के दौरान कुछ समय के लिए एकता दिखाई दी, लेकिन यह स्थायी नहीं रह सकी।[3]

बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता और गहराती गई। लखनऊ समझौता (1916) ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक मंच पर लाने की कोशिश की, लेकिन इसके बावजूद पृथक निर्वाचक मंडल की स्वीकृति ने सांप्रदायिक आधार को मजबूत किया। 1928 में नेहरू रिपोर्ट और जिन्ना के 14 सूत्रों के बाद, मुस्लिम लीग और कांग्रेस के रास्ते अलग हो गए। इस प्रकार, सांप्रदायिकता का विकास धीरे-धीरे एक राजनीतिक रणनीति से सामाजिक विभाजन और अंततः देश के विभाजन तक पहुंच गया।

बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग का गठन

बंगाल का विभाजन 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा एक प्रशासनिक कदम के रूप में किया गया था। अंग्रेजी सरकार ने इसे प्रशासनिक सुविधा के लिए आवश्यक बताया, लेकिन इसके पीछे छुपा हुआ उद्देश्य भारतीयों को धर्म के आधार पर बांटना था। बंगाल एक विशाल प्रांत था जिसमें बड़ी संख्या में हिंदू और मुसलमान रहते थे। अंग्रेजों ने इसे दो हिस्सों में बाँटने की योजना बनाई— पूर्वी बंगाल (जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक थे) और पश्चिम बंगाल (जहाँ हिंदू बहुसंख्यक थे)। इस विभाजन ने राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर बड़े बदलावों की नींव रखी।[4]

विभाजन के निर्णय के पीछे ब्रिटिश सरकार की "फूट डालो और राज करो" नीति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सरकार ने मुस्लिमों को यह विश्वास दिलाया कि विभाजन से उन्हें प्रशासनिक सुविधा और शिक्षा के क्षेत्र में अधिक अवसर मिलेंगे। मुस्लिम ज़मींदारों और उच्च वर्ग ने इस विभाजन का समर्थन किया क्योंकि उन्हें लगा कि इससे उनके राजनीतिक और सामाजिक अधिकार बढ़ेंगे। वहीं दूसरी ओर, हिंदुओं ने इसे एक षड्यंत्र के रूप में देखा और इसका तीव्र विरोध किया। इस विरोध ने स्वदेशी आंदोलन को जन्म दिया, जिसमें विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और देशी वस्तुओं को अपनाने पर बल दिया गया।

बंगाल विभाजन के विरोध ने पूरे देश में राजनीतिक जागरूकता को जन्म दिया। इस आंदोलन में विद्यार्थियों, महिलाओं और आम जनता की सक्रिय भागीदारी रही। इसका असर इतना व्यापक हुआ कि

सरकार को 1911 में विभाजन को वापस लेना पड़ा। लेकिन तब तक विभाजन का बीज बोया जा चुका था, जिसने हिंदू-मुस्लिम एकता को गहरा आघात पहुँचाया। मुसलमानों को लगने लगा कि उनके अधिकारों की रक्षा के लिए एक अलग राजनीतिक मंच की आवश्यकता है।

इसी पृष्ठभूमि में 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य मुसलमानों के राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक हितों की रक्षा करना था। मुस्लिम लीग ने पृथक निर्वाचक मंडल की मांग उठाई ताकि मुसलमान अपने प्रतिनिधि स्वयं चुन सकें। मुस्लिम लीग की स्थापना ने भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता को संस्थागत रूप दे दिया। अब राजनीतिक मुद्दे धर्म के आधार पर उठाए जाने लगे, जिससे राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता आंदोलन को गंभीर झटका लगा।

मुस्लिम लीग के गठन के साथ ही भारतीय राजनीति में दो प्रमुख धाराएँ उभरने लगीं — एक जो सभी धर्मों को साथ लेकर चलने की बात करती थी, और दूसरी जो विशेष रूप से मुसलमानों के हितों की बात करती थी। यह सांप्रदायिक ध्रुवीकरण आगे चलकर देश के बंटवारे का कारण बना। बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग की स्थापना केवल तत्कालीन राजनीतिक घटनाएँ नहीं थीं, बल्कि उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप की भविष्य की दिशा तय की। इन घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि सांप्रदायिकता अब भारतीय राजनीति का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है।

लखनऊ समझौता

लखनऊ समझौता 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुआ एक ऐतिहासिक राजनीतिक समझौता था। इस समझौते का उद्देश्य था दोनों प्रमुख समुदायों — हिंदू और मुसलमान के बीच राजनीतिक सहयोग को बढ़ावा देना और ब्रिटिश सरकार पर मिलकर दबाव बनाना ताकि भारत को स्वशासन की दिशा में अग्रसर किया जा सके।[5]

इस समझौते की पृष्ठभूमि में यह भावना थी कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को तभी बल मिलेगा जब सभी समुदाय एकजुट होकर संघर्ष करें। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस के साथ हाथ मिलाने के लिए कुछ शर्तें रखीं, जिनमें सबसे प्रमुख थी — मुसलमानों को पृथक निर्वाचक मंडल (Separate Electorate) का अधिकार देना। कांग्रेस ने, स्वतंत्रता आंदोलन की एकता बनाए रखने के उद्देश्य से, इन शर्तों को स्वीकार कर लिया।

इस समझौते के मुख्य बिंदु निम्नलिखित थे:

- मुसलमानों को पृथक निर्वाचन मंडल की मान्यता।
- मुसलमानों को उनके जनसंख्या अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देना।
- सभी समुदायों को धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक अधिकारों की सुरक्षा देना।
- भारतीयों को अधिक स्वायत्तता देने की माँग करना।

लखनऊ समझौते का तत्कालिक प्रभाव बहुत सकारात्मक रहा। इससे हिंदू-मुस्लिम एकता को बल मिला और स्वतंत्रता आंदोलन में नए जोश का संचार हुआ। लेकिन दीर्घकालिक दृष्टि से देखा जाए तो इस समझौते ने सांप्रदायिकता को वैधानिक आधार प्रदान कर दिया। कांग्रेस द्वारा पृथक निर्वाचक मंडल की स्वीकृति ने बाद में सांप्रदायिक राजनीति को और मजबूत किया।

इस प्रकार लखनऊ समझौता एक तरफ़ जहाँ राजनीतिक सहयोग और एकता का प्रतीक बना, वहीं दूसरी तरफ़ सांप्रदायिकता की नींव को भी मजबूती प्रदान कर गया। यह भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण किंतु विवादास्पद मोड़ साबित हुआ।

नेहरू रिपोर्ट और जिन्ना से मार्ग भिन्न होना

नेहरू रिपोर्ट 1928 में भारतीय नेताओं द्वारा तैयार एक संविधान मसौदा था, जिसे ब्रिटिश सरकार के सामने एक स्वशासी भारत की मांग के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह रिपोर्ट साइमन कमीशन के बहिष्कार के बाद बनी, जब भारतीयों ने खुद अपना संविधान बनाने का निर्णय लिया। इस रिपोर्ट का नेतृत्व पंडित मोतीलाल नेहरू ने किया और जवाहरलाल नेहरू इस समिति के सदस्य थे।^[6]

नेहरू रिपोर्ट में सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह था कि भारत को डोमिनियन स्टेटस (स्वशासी राष्ट्र) मिलना चाहिए और देश में सभी नागरिकों को समान अधिकार होने चाहिए, चाहे वे किसी भी धर्म के हों। रिपोर्ट ने पृथक निर्वाचन मंडल को अस्वीकार कर दिया और एक संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांत को प्राथमिकता दी।

नेहरू रिपोर्ट की कुछ प्रमुख बातें:

- समान नागरिकता और अधिकारों की वकालत।
- धर्म के आधार पर कोई विशेष राजनीतिक सुविधा नहीं।
- अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक और धार्मिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना।

मुस्लिम लीग, विशेषतः मोहम्मद अली जिन्ना, ने इस रिपोर्ट का विरोध किया। जिन्ना ने महसूस किया कि यह रिपोर्ट मुस्लिमों की राजनीतिक और सामाजिक पहचान को अनदेखा करती है। उन्होंने इसे मुसलमानों के खिलाफ बताया क्योंकि इसमें पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया था। जवाब में, जिन्ना ने 1929 में अपने प्रसिद्ध "14 सूत्र" प्रस्तुत किए, जो मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के लिए बनाए गए थे।

इस विरोध के बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच दूरी बढ़ती चली गई। जिन्ना, जो पहले हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे, अब "दो राष्ट्र सिद्धांत" की ओर बढ़ने लगे। यह घटना भारतीय राजनीति में निर्णायक मोड़ बन गई, जिसने अंततः देश के बंटवारे की राह प्रशस्त की।

इस प्रकार, नेहरू रिपोर्ट ने एक ओर जहाँ स्वतंत्रता और लोकतंत्र की नींव रखने की कोशिश की, वहीं दूसरी ओर इस रिपोर्ट से हिंदू-मुस्लिम राजनीतिक एकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

सांप्रदायिकता की परिभाषा

सांप्रदायिकता एक सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा है जिसमें समाज के विभिन्न धार्मिक, जातीय या सांस्कृतिक समूहों के बीच असहमति, भेदभाव और द्वेष को बढ़ावा दिया जाता है। यह उन समूहों के बीच भेदभाव, अलगाव और संघर्ष को जन्म देती है, जिनका उद्देश्य अपने धार्मिक, जातीय या सांस्कृतिक पहचान को अन्य समूहों से ऊपर रखना होता है। सांप्रदायिकता समाज में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अस्थिरता पैदा कर सकती है और अक्सर यह हिंसा और दंगों का कारण बनती है। इसका मुख्य तत्व यह है कि एक समूह अपनी पहचान और विश्वास को दूसरे समूह पर थोपता है और इसे राजनीतिक या सामाजिक लाभ के रूप में इस्तेमाल करता है।[7]

सांप्रदायिकता के सिद्धांत

सांप्रदायिकता के सिद्धांतों का विश्लेषण विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। सबसे प्रमुख और प्रभावशाली सिद्धांतों में से एक है मार्क्सवादी दृष्टिकोण, जो सांप्रदायिकता को सामाजिक और आर्थिक असमानताओं का परिणाम मानता है। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, सांप्रदायिकता एक औजार है जिसका उपयोग सत्ताधारी वर्ग अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा करने के लिए करता है। धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान के आधार पर विभाजन उत्पन्न करके, शासक वर्ग अपने वर्गीय उत्पीड़न को छुपाने और श्रमिक वर्ग की एकता को तोड़ने की कोशिश करते हैं। इससे समाज में सामाजिक न्याय

की बजाय धार्मिक और सांप्रदायिक संघर्ष पैदा होते हैं, जिससे श्रमिक वर्ग के हितों की अवहेलना होती है।[8]

1. **"डिवाइड एंड रूल" सिद्धांत (विभाजन और शासन का सिद्धांत):**

ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के दौरान यह सिद्धांत लागू हुआ था, जिसमें उपनिवेशी शक्तियों ने समाज को धार्मिक और जातीय आधार पर विभाजित कर दिया था। इसका उद्देश्य था कि विभिन्न समूहों के बीच असहमति और तनाव पैदा करके वे अपनी सत्ता बनाए रखें। इस सिद्धांत के अनुसार, सांप्रदायिकता का जन्म इस विभाजन से हुआ, जो समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच संघर्ष और असहमति पैदा करता है।

2. **सांस्कृतिक पहचान का सिद्धांत:**

इस सिद्धांत के अनुसार, सांप्रदायिकता समाज में विभिन्न धार्मिक या सांस्कृतिक समूहों की पहचान को एक मुख्य तत्व के रूप में प्रस्तुत करती है। इन समूहों का मानना होता है कि उनकी पहचान सबसे महत्वपूर्ण है और इसे अन्य समूहों से अलग या ऊपर रखना चाहिए। यह सिद्धांत सांप्रदायिक हिंसा और संघर्ष को तब जन्म देता है, जब एक समूह दूसरे समूह की पहचान को चुनौती देता है।

3. **राजनीतिक लाभ का सिद्धांत:**

सांप्रदायिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि इसका उपयोग राजनीति में किया जाता है। राजनीतिक दलों और नेताओं द्वारा धार्मिक और जातीय विभाजन का फायदा उठाने की कोशिश की जाती है ताकि वे अपने मतदाताओं को एकजुट कर सकें। इस सिद्धांत के अनुसार सांप्रदायिकता एक राजनीतिक उपकरण के रूप में काम करती है, जिससे चुनावी लाभ प्राप्त किया जाता है, लेकिन समाज में असंतोष और विभाजन बढ़ जाता है।[9]

4. **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण:**

समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से सांप्रदायिकता समाज के अंदर विभिन्न समूहों के बीच असमानताओं और संघर्षों को जन्म देती है। इस सिद्धांत के अनुसार सांप्रदायिकता तब उभरती है जब एक समूह दूसरे समूह को उपेक्षित या दबाने की कोशिश करता है और इससे सामूहिक संघर्ष और हिंसा पैदा होती है। यह

समाज के सामाजिक ताने-बाने को कमजोर करता है और समाज के भीतर एकता और सहयोग को हानि पहुंचाता है।

5. सांप्रदायिक हिंसा का सिद्धांत:

इस सिद्धांत के अनुसार, जब समाज में एक समूह के भीतर गहरी धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताएँ होती हैं, तो ये भिन्नताएँ सांप्रदायिक हिंसा का कारण बन सकती हैं। यह हिंसा समूहों के बीच नफरत और असहमति के कारण होती है और अक्सर यह सशस्त्र संघर्ष या दंगों के रूप में सामने आती है।

इन सिद्धांतों के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि सांप्रदायिकता समाज के भीतर गहरे विभाजन और संघर्ष का कारण बन सकती है और इससे निपटने के लिए सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उपायों की आवश्यकता होती है।

सांप्रदायिकता और भारतीय समाज

भारतीय समाज में धर्म, जाति, और भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो इसकी संरचना और सामाजिक गतिशीलता को निर्धारित करती है। धर्म भारतीय समाज का एक अभिन्न हिस्सा है, और यहाँ की विविधता में अनेक धार्मिक समुदायों का अस्तित्व है जैसे हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन और अन्य। यह धार्मिक विविधता भारतीय समाज में सांप्रदायिकता को भी जन्म देती है, क्योंकि जब धर्म एक प्रमुख पहचान बन जाता है, तो इसे लेकर असहमति और संघर्ष भी उत्पन्न होते हैं। जाति और भाषा भी समाज की संरचना का अभिन्न हिस्सा हैं, और इन तत्वों के आधार पर विभाजन और भेदभाव की भावना मजबूत होती है। भारतीय समाज में जातिवाद का प्रभाव गहरे रूप में मौजूद है, जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असंतुलन और असमानता का कारण बनता है। इसी तरह, भाषा के आधार पर भी क्षेत्रीय और सांप्रदायिक पहचान बनती है, जिससे एक और विभाजन होता है।[10]

विविधता में एकता भारत की पहचान है, लेकिन सांप्रदायिक संघर्ष इस एकता को चुनौती देता है। भारतीय समाज में अलग-अलग धर्मों, संस्कृतियों, और भाषाओं का अस्तित्व रहा है, और इस विविधता के बावजूद समाज में एकता और सहिष्णुता की परंपरा रही है। भारतीय संविधान भी धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करता है, और समाज में धार्मिक समरसता के लिए कई कदम उठाए गए हैं। फिर भी, सांप्रदायिक संघर्षों की स्थिति बनी रहती है, जैसे कि धार्मिक भेदभाव, दंगे और क्षेत्रीय हिंसा। इस संदर्भ में, भारतीय समाज में विविधता को एक साथ जोड़े रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि जब धर्म, जाति और भाषा की पहचान

पर अत्यधिक बल दिया जाता है, तो इससे सांप्रदायिक असहमति और संघर्ष बढ़ सकते हैं। सांप्रदायिक राजनीति भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डालती है और यह विशेष रूप से सिक्खों, मुसलमानों और हिंदुओं के संदर्भ में देखी जाती है। सिक्खों के संदर्भ में 1984 के सिक्ख विरोधी दंगे और उस समय की सांप्रदायिक राजनीति ने सिक्ख समुदाय के बीच विश्वास की कमी उत्पन्न की। मुसलमानों के संदर्भ में, विशेष रूप से विभाजन के बाद से सांप्रदायिक राजनीति ने उन्हें एक अलग धार्मिक पहचान और सुरक्षा की चिंता में डाल दिया। हिन्दू समुदाय में भी कई बार धार्मिक पहचान को राजनीति के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया, जो कि सांप्रदायिक उन्माद को बढ़ावा देता है। सांप्रदायिक राजनीति के कारण विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच विवाद और भेदभाव की भावना पैदा होती है, जिससे समाज में विभाजन और हिंसा की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार भारतीय समाज में सांप्रदायिकता एक जटिल और गहरी समस्या है, जो धर्म, जाति, और भाषा की विविधता के आधार पर आकार लेती है। हालांकि विविधता में एकता का सिद्धांत भारतीय समाज का आदर्श है लेकिन सांप्रदायिक राजनीति और सामाजिक तनाव इसे कमजोर करते हैं। यह आवश्यक है कि हम भारतीय समाज में सांप्रदायिकता के प्रभावों को समझें और इसका समाधान खोजने के लिए सामूहिक प्रयास करें।[11]

सांप्रदायिकता के कारण:

1. धार्मिक असहिष्णुता

धार्मिक असहिष्णुता सांप्रदायिकता का एक मुख्य कारण है। जब विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक-दूसरे की मान्यताओं, परंपराओं और पूजा-पद्धतियों का सम्मान नहीं करते, तब विवाद और संघर्ष उत्पन्न होते हैं। धार्मिक कट्टरता से लोग अपने धर्म को श्रेष्ठ और अन्य को हीन समझते हैं। इससे सामाजिक एकता में बाधा आती है और आपसी तनाव बढ़ता है। कभी-कभी धार्मिक नेताओं द्वारा भड़काऊ भाषण भी इस असहिष्णुता को बढ़ावा देते हैं। ऐसी मानसिकता सांप्रदायिक संघर्ष को जन्म देती है और सामाजिक सौहार्द को नष्ट करती है। धर्म का उपयोग राजनीति या निजी स्वार्थों के लिए करना भी इसे बढ़ाता है।

2. राजनीतिक स्वार्थ

राजनीतिक दल कई बार वोट बैंक की राजनीति के तहत धार्मिक भावनाओं का सहारा लेते हैं। वे धर्म के आधार पर समुदायों को बाँटते हैं और एक-दूसरे के खिलाफ उकसाते हैं। इस प्रकार की राजनीति समाज में घृणा और अविश्वास फैलाती है। सांप्रदायिक दंगों के पीछे कई बार राजनीतिक रणनीति होती है, जिससे विशेष समुदाय को समर्थन या विरोध में संगठित किया जा सके। सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म का इस्तेमाल

लोकतंत्र के लिए खतरनाक है। यह न केवल सामाजिक ताने-बाने को तोड़ता है बल्कि लंबे समय तक सांप्रदायिक तनाव बनाए रखता है।[12]

3. ऐतिहासिक कारण

भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों का एक लंबा और जटिल इतिहास रहा है। मुगल शासन, धार्मिक युद्ध और ब्रिटिश शासन के दौरान 'फूट डालो और राज करो' नीति ने साम्प्रदायिकता को गहरा किया। ऐतिहासिक घटनाओं की पक्षपाती व्याख्या, खासकर शिक्षा और मीडिया में, लोगों के मन में पुराने घावों को ताजा कर देती है। इससे एक समुदाय दूसरे को उत्पीड़क या पीड़ित के रूप में देखने लगता है। ऐतिहासिक घटनाओं को वर्तमान में दोहराना और उनसे नफरत फैलाना, सांप्रदायिक भावनाओं को मजबूत करता है और सामाजिक समरसता को नुकसान पहुंचाता है।

4. आर्थिक असमानता

आर्थिक संसाधनों का असमान वितरण और बेरोजगारी भी सांप्रदायिक तनाव को जन्म देते हैं। जब किसी विशेष समुदाय को आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ समझा जाता है, तो उनके बीच असंतोष पैदा होता है। वहीं, अगर कोई समुदाय अपेक्षाकृत सम्पन्न हो तो दूसरे समुदाय में ईर्ष्या और विरोध की भावना पनपती है। आर्थिक अवसरों की कमी से युवा वर्ग आसानी से भड़काऊ प्रचार का शिकार बन सकता है। गरीबी, शिक्षा की कमी और बेरोजगारी जैसे कारक सांप्रदायिक नेताओं को लोगों को बहकाने का मौका देते हैं, जिससे समाज में विभाजन और हिंसा बढ़ती है।

5. भड़काऊ मीडिया और अफवाहें

मीडिया की भूमिका भी सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में अहम होती है। जब मीडिया पक्षपातपूर्ण रिपोर्टिंग करता है या किसी घटना को धार्मिक रंग देता है, तब लोगों के बीच गलतफहमियां और तनाव पैदा होते हैं। सोशल मीडिया पर फैलने वाली अफवाहें, फर्जी वीडियो और उत्तेजक संदेश बहुत तेजी से आग भड़काने का काम करते हैं। बिना पुष्टि के जानकारी साझा करने से हिंसा और दंगे तक हो सकते हैं। ऐसे माहौल में लोगों के बीच भरोसा खत्म हो जाता है और सामूहिक भावनाएं उग्र रूप ले लेती हैं, जिससे सांप्रदायिकता को बल मिलता है।

सुझाव

1. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रणाली

शिक्षा प्रणाली में धर्मनिरपेक्षता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। विद्यार्थियों को सभी धर्मों की मूल बातें, समानताएँ और शांति-संदेश सिखाए जाएँ जिससे वे सहिष्णु और व्यापक दृष्टिकोण वाले नागरिक बनें। इतिहास की निष्पक्ष व्याख्या, तटस्थ पाठ्यक्रम और नैतिक शिक्षा से सांप्रदायिक सोच को जड़ से खत्म किया जा सकता है। विद्यालयों में सांस्कृतिक विविधता को सम्मान देना सिखाया जाए। यह दृष्टिकोण बच्चों में बचपन से ही समरसता, सहयोग और समझ को बढ़ावा देता है, जिससे वे बड़े होकर समाज में एकता बनाए रखने में योगदान करते हैं।[13]

2. राजनीतिक जिम्मेदारी और सख्त कानून

राजनीति में सांप्रदायिकता का उपयोग रोकने के लिए सख्त कानूनों की आवश्यकता है। नेताओं द्वारा धर्म के नाम पर वोट माँगना या नफरत फैलाना अपराध माना जाए। चुनाव आयोग को ऐसे मामलों पर त्वरित कार्रवाई करनी चाहिए। सांप्रदायिक हिंसा फैलाने वालों पर कड़ी सजा दी जाए ताकि यह एक उदाहरण बने। राजनीति को धर्म से अलग रखना लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। यदि राजनीतिक दल साम्प्रदायिकता से दूरी बनाए रखें और सामाजिक समरसता को बढ़ावा दें, तो इससे समाज में एक सकारात्मक संदेश जाता है।

3. संवाद और मेल-जोल को बढ़ावा

विभिन्न धर्मों और समुदायों के बीच नियमित संवाद, चर्चा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना चाहिए। सामाजिक आयोजनों, मेलों, त्योहारों और सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से एक-दूसरे की परंपराओं को समझने का अवसर मिलता है। इससे पूर्वाग्रह कम होते हैं और आपसी विश्वास मजबूत होता है। युवाओं को इस दिशा में विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाए कि वे सामाजिक सद्भाव के लिए सक्रिय रूप से काम करें। जब लोग एक-दूसरे के साथ जुड़ते हैं और बातचीत करते हैं तो भेदभाव और नफरत की दीवारें गिर जाती हैं।

4. निष्पक्ष और संवेदनशील मीडिया

मीडिया को जिम्मेदारी से काम करना चाहिए। समाचारों को बिना भड़काए, तथ्यात्मक और संतुलित तरीके से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। किसी एक समुदाय को दोषी ठहराने या पीड़ित दिखाने से बचा जाए। मीडिया संस्थानों को आत्म-नियंत्रण और जवाबदेही अपनानी चाहिए। साथ ही, अफवाहों के खंडन और सही सूचना प्रसारित करना भी उनकी जिम्मेदारी होनी चाहिए। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को भी

हेट स्पीच और फर्जी खबरों पर कड़ा नियंत्रण रखना चाहिए। मीडिया यदि समझदारी से कार्य करे, तो यह समाज में शांति और सद्भाव का माध्यम बन सकता है।

5. युवाओं में जागरूकता और रोजगार

युवाओं को सांप्रदायिकता के दुष्प्रभावों के बारे में जागरूक करना आवश्यक है। उन्हें शिक्षा, रोजगार और कौशल विकास के अवसर देकर समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जाए। बेरोजगारी और हताशा से भटके हुए युवा आसानी से सांप्रदायिक नेताओं के शिकार बनते हैं। यदि वे व्यस्त, जागरूक और आत्मनिर्भर हों तो समाज में सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं। विभिन्न समुदायों के युवाओं के बीच खेल, सेवा कार्यों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मेल-जोल बढ़ाया जाए। ऐसा माहौल युवाओं को एकता और भाईचारे की ओर ले जाएगा।

6. सांप्रदायिक अपराधों पर त्वरित न्याय

सांप्रदायिक हिंसा के मामलों में त्वरित और निष्पक्ष न्याय सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। कई बार दोषियों को सजा नहीं मिलती या बहुत देर से मिलती है, जिससे पीड़ित समुदाय में असंतोष पैदा होता है। यदि सभी को यह विश्वास हो कि कानून सबके लिए बराबर है और दोषी को अवश्य सजा मिलेगी, तो हिंसा की प्रवृत्ति घटेगी। विशेष न्यायाधिकरण और फास्ट ट्रैक कोर्ट्स बनाकर ऐसे मामलों का जल्द निपटारा किया जाए। निष्पक्ष जांच और निष्कलंक व्यक्तियों की रक्षा करना भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

निष्कर्ष

भारत में सांप्रदायिकता का उदय एक जटिल और गहरे ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। यह भारतीय समाज में धर्म, जाति, और संस्कृति के बीच तनाव और संघर्ष का परिणाम है, जो समय के साथ और विशेष रूप से ब्रिटिश उपनिवेशीकरण के दौरान तेज़ हुआ। उपनिवेशी शासन ने विभाजन की नीति अपनाई, जिससे विभिन्न धार्मिक और जातीय समूहों के बीच अविश्वास और शत्रुता बढ़ी। भारतीय समाज में धार्मिक पहचान को एक प्रमुख राजनीतिक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया, जिससे सांप्रदायिक तकरार की स्थिति बनी। सांप्रदायिक हिंसा ने भारत की स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रभावित किया, विशेष रूप से विभाजन के समय, जब हिन्दू-मुसलमान के बीच तनाव चरम पर था। इस सांप्रदायिक विभाजन का असर आज भी भारतीय समाज में देखा जा सकता है, जहां धार्मिक पहचान को राजनीतिक रूप से प्रबल करने की कोशिश की जाती है। हालांकि, भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता

का आदर्श प्रस्तुत किया, लेकिन सांप्रदायिकता का उदय समाज के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक असमानताएं और संघर्ष पैदा करता है, जो न केवल सामूहिक सौहार्द को खतरे में डालता है, बल्कि राष्ट्रीय एकता की भावना को भी कमजोर करता है।

संदर्भ

1. जाफरलॉट, सी. (2007). भारत में हिंदू राष्ट्रवादी आंदोलन। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. वार्ष्णेय, ए. (2002). जातीय संघर्ष और नागरिक जीवन: भारत में हिंदू और मुसलमान। येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. इंजीनियर, ए.ए. (2003). गुजरात नरसंहार: 2002 में गुजरात में मुस्लिम विरोधी हिंसा। ओरिएंटल लॉन्गमैन।
4. सेनगुप्ता, ए. (2017). अल्पसंख्यक समुदाय बनना: विभाजन के बाद कलकत्ता के मुसलमान। कलकत्ता में (पृष्ठ 434-458)
5. ओवेन, एच.एफ. (1972). लखनऊ समझौते पर बातचीत। जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, 31(3), 561-587.
6. रहमान, ए. (2014)। भारत में मुस्लिम प्रश्न: धर्मनिरपेक्षता की राजनीति। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. पांडे, जी. (1992)। औपनिवेशिक उत्तर भारत में सांप्रदायिकता का निर्माण। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. हसन, एम. (2002)। राष्ट्र का मुकाबला: भारत में धर्म, समुदाय और लोकतंत्र की राजनीति। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. शेख, ए. (2008)। स्वतंत्रता के बाद के भारत में सांप्रदायिक दंगे: एक आलोचनात्मक अध्ययन। सेज प्रकाशन।
10. बानू, आर. (2011). धार्मिक पहचान और राजनीतिक लामबंदी: भारत में मुसलमान। रूटलेज।
11. सक्सेना, एस. (2007). भारत में सांप्रदायिक हिंसा: एक ऐतिहासिक विश्लेषण। पियर्सन एजुकेशन इंडिया।
12. चंद्रा, बी. (2008). आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता. हर आनंद प्रकाशन.
13. चौधरी, आर. (2010). भारत में धर्मनिरपेक्षता: धार्मिक पहचान का राजनीतिक विमर्श। स्पिंगर।